ॐ

* श्रीगणेशाय नमः *

विद्वज्जन विचार पत्रम्

सम्पादक—

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री १०८ श्री स्वामी निर्द्वन्द्वाश्रमजी

प्रचारक—

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री १०८ श्री स्वामी नृसिंहाश्रमजी

ॐ

प्रिय साधुजन तथा प्रेमी बान्धवोंकी

विद्वज्जन विचार पत्रम्

शंकर शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्र भाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥
इश्वरो गुरुरात्मेति मूर्ति भेद विभागिने ।
व्योम वत्व्यास देहाय दक्षिणा मूर्तये नमः ॥

छन्द

जप करै तप करै किसीसे न द्वेष करे
हरिको भजन करि धर्म करतु है ।
पूजा करै पाठ करै आत्मा बिचार करै
गुरुजीका ध्यान धरि आनन्द भरतु है ॥
इन्द्रियको बश करि मनको दमन करि
साधु सतसंग करि धीरज धरतु है ।
कहैं निर्द्वन्द्व तुम सुनिए मुमुक्षु जन
ऐसा जो करै सो भवसागर तरतु है ॥

विदित हो कि त्रिदण्डी विष्वक्सेनाचार्य जो बलिया प्रान्त व आरा प्रान्तमें प्राय: गंगाजीके तटपर रहते हुए यज्ञादिक किया करते हैं और जो श्री शंकरजीके पूर्ण विरोधी हैं और वैष्णव सम्प्रदायको त्यागकर सर्व सम्प्रदायोंके महा निन्दक हैं जैसी निन्दा इन्होंने लिखी है वैसी निन्दा आजतक किसी आचार्य व विद्वानने नहीं लिखी है और सुननेमें आया है कि अपने बनाये हुए यत्रीन्द्र धरम मारतण्डके पंचम उल्लासके आदिमें लिखते हैं कि:—

बौद्धा अन्धकार परिहार दिवाकराय ।
श्री वैष्णवाम्बुनिधि पूर्ण निशाकराय ॥
अद्वैतवादि करि यूथ मृगाधिपाय ।
तस्मै नमोऽस्तु सततंग यति पुंगवाय ॥

अर्थ—बौद्धरूप अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्यके सदृश और श्री वैष्णव रूप समुद्रको विकसित करनेके लिए पूर्ण चन्द्रमा के समान और गजयूथ रूप अद्वैत वादियोंको पराजय करनेके लिए सिंहके सदृश जो यतिराज हैं उनको मैं साष्टांग प्रणाम करता हूं। इस अर्थको कई विद्वानोंने उपहास दृष्टिसे देखकर कहा कि विकसित अर्थ पुष्पोंमें शोभित होता है। समुद्रमें विकसित अर्थ किसी तरह भी नहीं बन सकता है। और द्वादस उल्लासके आदि-में लिखते हैं कि यदि राज भगवनको सरस्वतीसे सुरभित अन्तः-करण वाले सज्जनोंके चरणारविन्दुको अपने नम्रशाली सिरके ऊपर रखता हूं और यतिराजसे अन्य सिद्धान्त वाले और दुर्मदसे

दग्ध चित्तवाले वादियोंके सिरपर मैं अपने वाम चरणको रखता हूं।

आप लोग देखिये। इस पुस्तकके उपक्रम और उपसंहारका इस पुस्तकमें कैसा योग मिलाया है। भला कोई पूछे कि कितनोंके सिरपर लात रक्खी और कितने मतोंका खण्डन कर नाम निशान मिटा दिया है पर बात यही है कि (गाल बजावत तुम्हें न लाजा) विचार करो कि जैसे शब्द ये कहते हैं ऐसे अनुचित शब्द आज तक कहीं भी सुननेमें नहीं आए हैं। दूसरी बात यह है कि जितनी इनकी पुस्तकें हैं उन सबमें यही लिखा है कि श्री १००८ श्री परम हंस परिव्राजकाचार्य जगतगुरु विष्वकसेनाचार्य्य। पर विचार कर देखा जाय तो आप एक घरके भी गुरु नहीं हैं क्योंकि जितने देश-में ये गंगाजीके तटपर रहते हैं हमने भली प्रकार विचार कर वहां देखा तो एक दो ब्राह्मणोंको छोड़ जो सदासे आचारवान् हैं उनके बाद और किसी ब्राह्मणके घरका शुद्ध न देखा और आचरण तो दूर रहा पर जो नोचोंके उबले चावलोंका भोजन करना यही छुड़ा देते तो घर गुरु अवश्य मान- लिया जाता। हां, परनिन्दक या स्वार्थ गुरु लिखते तो ठोक था क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष देखनेमें आया है सो सब आगे कहा जायगा। नहीं तो केवल काशोजीको विजय कर लेते तो भी जगतगुरु कहना बन जाता नहीं तो यही हाल है कि :—

अकृत्वा शत्रु संहार मगत्वाऽखिल भूश्रियम्।
राजा हमिति शब्दान्नाँ राजा भवितु मर्हति॥

अर्थ—सब शत्रुओंके नाश किए विना और भूमण्डलके राज भोग किये विना हम राजा हैं ऐसा कहनेसे जैसे कोई राजा नहीं होता है तैसे ही शब्द मात्रसे क्या जगद्गुरु हो सकता है।

सो भी कहा है (मन मोदक नहिं भूक बुताई)। आपन मुख इन आपन करनी। झूठ अनेक बार बहु वरनी ॥

और क्या लिखते हैं कि अद्वैत सिद्धान्त महा गलत है और एक दण्डका विधान कहीं नहीं है। इसीका बार-बार खण्डन और निन्दा करना यही इनका मुख्य धर्म है लेकिन यवन और ईसाई धर्मके ऊपर जो कटाक्ष रूपसे एक शब्द भी लिख देते तो घोर पापके भागी हो जाते। जो भारतवर्षकी लाखों करोड़ों गौओंको खाकर हजम कर गये और अनेक स्त्री पुरुषोंको यवन और ईसाई बना डाला। तो पूछना चाहिये क्या इनका धर्म और आपका धर्म एक ही है जो इनके ऊपर एक शब्द भी नहीं कहा पर अद्वैतवाद और एक दण्डके ऊपर इतना घोर कुठाराघात करते हो। इन्होंने तुम्हारा क्या सर्वस्व नष्ट कर दिया है और यह भी पूछना चाहिये कि तुम को दस बारह वर्षसे तीन दण्डका खंडन करते हो चुका है तो बताओ इन दोनोंमें किनकी विशेष संख्या है और तुमने कितने तीन दण्डोंके अधिकारी बनाये हैं जब एक दण्डका विधान ही नही है तो विशेष रूपसे त्रिदण्डी ही होना चाहिये। त्रिदण्डधारी बहुत कम हैं और जो हैं वे ढोंगी हैं और काशी आदि उत्तम स्थानोंसे परम्परासे एक दण्डी ही सुनने और देखनेमें आते हैं तो अच्छा आपका उत्तम सिद्धान्त है जिसकी इतनी प्रशंसापर भी कोई इसकी इच्छा नही करता है तो बात यही है।

सुनिए सुधा देखिये गरल।

आप त्रिदण्डकी प्रशंसा भी क्या करते हैं सो भी सुनो। त्रेता में रावण त्रिदंड ही धारण कर सीताको हर लाया था और द्वापरमें अर्जुन भी त्रिदंड धारण कर सुभद्राको हर लाया था और मणिपुर में त्रिदंड धारण किए ही राजकन्यासे भोग किया जिससे बभ्रुवाहन पैदा हुआ और वह अर्जुनका पुत्र कहलाया और फिर त्रिदंडको छोड़ गृहस्थ हो गया और रावण त्रिदंडको छोड़ विषयोंको भोगता हुआ रामसे युद्ध कर परिवार सहित मारा गया। यह त्रिदंडकी महिमा है और वर्तमानमें भी गोकुलिया गोसांई कहे जाते हैं इन लोगोंके किसी पूर्वजने त्रिदंड धारण किया था फिर कुछ कालके बाद दंडको छोड़कर गृहस्थ हो गये। कहांतक कहें, माथा बहुत है पर लेख थोड़ा लिखना है।

इनसे पूछा जावे क्या एक दण्डधारीने भी ऐसा पूर्वसे लेकर आजतक किसीने किया है। आगे क्या लिखते हैं कि शिखासूत्र परित्यागीको श्रुतिमें सन्यासी नहीं कहा है इससे वह मत वेदसे वाह्य है तो उनसे पूछा जाय कि (यदा तु विदितं तत्वम् परं ब्रह्म सनातनम्। तदैक दंडं संगृह्य सोपवातां शिखां त्यजेत्॥) यह क्या वेद वाक्य मिथ्या है कि इनका कथन मिथ्या है। वेद वाक्य तो मिथ्या नहीं है। इससे इनका कथन ही मिथ्या है। धर्मवान्को चाहिये कि मिथ्यावादीका मुख स्वप्नमें भी न देखे और उसके कथनोंको तो स्वान विष्टाके समान त्याग देवे नही तो घोर पापका भागी हो जायेगा। यह शास्त्रकी आज्ञा है और असत्यवादी

महात्माका वेश धारण कर जिस ग्राम देश और प्रान्तमें रहता है वहां सुख शान्ति कदापि नहीं होती है सो तो सब हीको प्रत्यक्ष देखनेमें आता हैं कि जितने देशमें गंगा तटपर इनकी कृपा है वहांके रहने वाले घोर दुःख हीको भोग रहे हैं कि विचारोंको न तो सुख से रहने हीको ठौर है और न सुखसे अन्न वस्त्र ही प्राप्त होता है और दिन प्रतिदिन दुख हीको प्राप्त हो रहे हैं और गंगाजीका भी उतने ही देशमें महाकोप हैं जितने देशमें ये बड़े बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। होना तो सुख चाहिए पर दुःख ही होता है। दुःख होनेका कारण एक और भी है कि शिवके पूर्ण द्रोही और परिनिन्दक हैं जहांपर शिवद्रोही और परिनिन्दक रहता है वहांका कल्याण कैसे हो सो कहा भी है—

शिव द्रोही मम दास कहावे, सो नर सपने मोंहि न भावे।
पर निन्दक चमगादड़ होंही, रौ-रौ नर्क कल्पशत परहीं॥

काशीजीमें जिसने इनके यतीन्द्र धर्म मार्तण्डको देखा उसने घोर पश्चात्ताप कर यही कहा कि ऐसे अनर्थका लेख करनेवाला तो महा दुर्गतिको प्राप्त होगा और छपानेवाला भी रव रवादि नरकोंमें पड़ेगा। और जो इसको पढ़े या सुनेगा वह भी कल्याणको प्राप्त न होगा और बहुतोंने तो देखते ही उपेक्षा कर दी और कहा, हम ऐसे नास्तिककी पुस्तकको न देखेंगे। और क्या लिखा है सो भी देखो।

(चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदंडीनः)

अर्थ—चार प्रकारके जो सन्यासी हैं वह सब त्रिदंडी हैं। तो पूंछना चाहिये कि क्या तीन वेणु दण्डोंका विधान है या वाग्दण्ड

कर्म दण्डश्च मनो दण्डश्च तें त्रयः। यस्येते नियता दण्डा सत्रिदण्डी महा यतीः। श्रुत्युक्त वागादि त्रिदण्डका विधान है और क्या लिखते हैं कि सब जीवोंका हित करें। शान्त रहै त्रिदण्ड कमण्डलु धारण करें एका राम हो सबको त्यागकर भिक्षाके लिये गांवमें जावे। इस प्रमाणसे त्रिदण्डी ही पूज्यतम और परमहंस सन्यासी हैं इसमें भी पूछना चाहिये जब ऐसा है तो तुम एक जगह पर ही बैठे हुये अनेक प्रकारके फल और दूध ही क्यों पाया करते हो क्या ऐसा ही है।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। निज आचरहीं ते नर न घनेरे॥

और भी अपने सिद्धान्तको पुष्टिके वास्ते लिखा है कि त्रिदंड धारण मत अति प्राचीन है इससे रावणने उसी वेशको धारण कर जानकीका हरण किया था इससे क्या सिद्ध हुआ कि यह मत महा प्रपञ्च और छलका कारण है सो पीछे दिखा ही चुके हैं पर इस स्थलमें त्रिदण्डके प्रमाण बहुत लिखते हैं कि रावण सन्यासीका रूप बनाकर जानकीके पास गया। चिक्कन काषाय वस्त्र यज्ञोपवीत शिखा छाता जुता लिये वाम अङ्कमें त्रिदण्ड दबा कर गया और पहिले बहुत से त्रिदण्डी हो गये हैं यह महाभारतके भविष्य पर्वमें हंसडिम्भकके उपख्यानमें स्पष्ट लिखा है और पुष्कर निवासी सब त्रिदण्डी थे इस शिष्टाचारसे ब्राह्मणको त्रिदण्ड जरूर ग्रहण करना चाहिये इतना जोर देकर कहते हैं पर ग्रहण कोई नहीं करता है क्योंकि सब जानते हैं कि यह त्रिदण्ड मत या तो छल और प्रपञ्चके वास्ते है या इनके मतसे वहुधकके वास्ते है परमहंसके

वास्ते नहीं है अगर होता तो जैसा उपनिषिदोंमें कहा है वैसा विधान होता जैसे (परमहंस शिखा यज्ञोपवीत रहितः पञ्च गृहेषु कर पत्रि एक कौपीनधारीशाटी मेकामेकं वैणवं दण्डमेक शाटी धरोवा भष्मोद्धूलन परः सर्वो त्यागी) ऐसा परमहन्सके वास्ते उपनिषद्में लिखा है और ये तो परमहंसके वास्ते त्रिदण्ड लिखते हैं सो भी पूछना चाहिये कि जैसा परमहन्सको एक वेणुदण्डका विधान है किसी उपनिषद्में तीन वेणुदण्डोंका भी विधान कहींपर है अगर हैं तो कुहुदकके वास्ते ही त्रिदण्डका विधान है परमहंसके वास्ते त्रिदण्डका विधान कहीं नहीं है और भी इनकी बाखूबी है कि मूलमें तो और ही लिखा है और अर्थमें कुछ और ही लिखते हैं और कहीं कहीं मूल. पाठको भी बदल दिया है सो भी दिखाया जायगा। और हंस सन्यासके वास्ते भी त्रिदण्डका विधान उपनिषदोंमें नहीं है क्योंकि प्रयागराज झुसी हंस तीर्थ पर एक सन्यासी रहते हैं उनके पास एक स्वेत दण्ड स्वेत वस्त्रादि ही है और वहुदक के वास्ते लिखा है कि (श्वेतोर्ध्व पुण्ड्रधारी त्रिदण्डः वहुदकः शिखादि कंथाधरः) अब एक दण्डका खण्डन बड़े जोरसे और बहुत प्रमाणोंसे करते हैं सो भी सुनो।

(एक दण्डष्यतु शास्त्रे निषेधो बर्ततेऽतएव यादव प्रकाशः एक दण्डत्यक्त्वा त्रिदण्ड ग्रहितवान येन यतिधर्म समुच्चयो विरचितः यज्ञ मूर्ति रप्येवं त्रिदण्ड जगाहेति स्पष्टं प्रपन्ना मृत्ये ग्रन्थेः)

यह अपने वैष्णव ग्रन्थोंका प्रमाण लिखे हैं पर वर्त्तमानमें प्रत्यक्ष देखा है कितने रामानुज सम्प्रदायको त्याग कर एक दण्डको ग्रहण किया और कर रहे हैं और रामानुजकी और उनकी सम्प्रदायकी महानिन्दा करते हैं उसको लिखना हम यहांपर पसन्द नहीं करते हैं जैसी उस सम्प्रदायकी निन्दा करते हैं उस सबको लिखा जावे तो लेख बहुत बढ़ जावे इससे नहीं लिखा है उनमें दो एकके नाम ये हैं। स्वामी माधवाश्रमजी स्वामी ओंकारश्रमजी स्वामी शिवरामाश्रमजी यह चक्रांकित होते हुए भी सन्यास ग्रहण किया है तो प्रत्यक्ष सही है या इनका लेख सही है और जो लिखा है कि शास्त्रमें एक दण्डका निषेध है तो यह प्रमाण उपनिषद्का झूठ है।

(कौपीनं युगलं कंथा दंड एकः परिग्रहः।
यते परमहंसास्य नाधिकं तु विधीयते)

देखो कितना झूठ लिखा है और भी इनको मूर्खताको देखिये कि मन्त्रके पाठको कैसे बदलते हैं।

एक दण्डो धृतोयेन सर्वाशी ज्ञान वर्जित।
सयाति नरका घोरान् महारौरव सज्ञितान्॥

एक दण्डो धृतोयेन, यह पाठ ऐसा नहीं है यह शुद्ध पाठ है। काष्ट दण्डों धृतोयेन, लेकिन इन लोगोंके कथनानुसार मान लिया जावे तो क्या—

त्रयोदण्डो भृतोयेन सर्वाशी ज्ञान वर्जितः ।
त्रिपाद् विभूति प्रापन्न सर्वदुःख विनश्यति॥

ऐसा पाठ तो सत्य ही होगा, दूसरा प्रमाण लिखा है किः—

एक दण्ड समाश्रित्य जीवन्ति वहवो द्विजाः ।
नतेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमत्रो पजीविनम् ॥

यह भी पाठ ऊपरके ही समान समझोः—

त्रीन दण्डम् समाश्रित्य जीवन्ति वहवो द्विजाः ।
नतोषा मपवर्गोऽस्ति ॥

ऐसा भी सत्य है अब जो यह लिखा है किः—

यस्त्वेक दण्डमालंव्य ब्रह्मं कर्म यति स त्यजेत् ।
स चाण्डालो महा पापी रौरवं नरकं ब्रजेत ॥

अर्थ—जो एक-एक दण्ड लेकर ब्राह्मणके कर्मको छोड़ देता है वह डोम और बड़ा भारी पापी है। मरनेपर रौरव नरकमें जाता हैः—

एक दण्ड समाश्रित्य जीवन्ति वहवो नराः ।
नरके रौरवे घोरे कर्म त्यागात्पतन्ति ते ॥

अर्थ—एक दंडके आश्रमसे बहुतसे मनुष्य जीते हैं वे सब कर्म छोड़नेसे रौरव नाम घोर नरकमें पड़ते हैं इससे सन्यासीको कर्म परित्याग नहीं करना चाहिये।

उत्तर—जीवन मुक्त सन्यासीका तो कहीं जाना ही नहीं होता है तो नरकमें कौन जावेगा सो श्रुतिमें भी कहा है कि:—

ज्ञातस्य प्राण उत्क्रामन्ति ।

ये जैसो मुक्ति मानते हैं वह सुनो। जब ज्ञानी मर कर जाता है तो विरजा नदीमें स्नानकर सूक्ष्म शरीरको छोड़ त्रिपदा विभूति वैकुण्ठ धाममें जाकर दास भावसे नित्य सेवा टहलको प्राप्त होता है और फिर उसका जन्म नहीं होता है। पर विचार किया जावे तो जै विजय जो सारूप्य मुक्तिमें स्थित और भगवानके प्रत्यक्ष निकट निवासी थे सो तो राक्षस योनिको प्राप्त हुए। तो औरोंकी क्या कही जावे।

जो यह लिखा है कि सन्यासीको कर्म त्याग न करना चाहिये सो:—

कर्मणा वध्यते जन्तुर्विद्ययाच विमुच्यते ।
तस्मात्मर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥

अर्थ—जीव कर्मसे बांधा जाता है ब्रह्म विद्यासे छूटता है इससे जो पारदर्शी यती हैं वह कर्म नहीं करते हैं इस प्रमाणसे इनके मुखमें धूल डाल देना चाहिये।

क्रियानाशे भवेचिन्ता नाशोऽस्माद्वासना क्षयः ।
वासना प्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्ति रिष्यते ॥

अर्थ—कर्मके नाश होनेसे चिन्ताका नाश होता है और चिन्ता

का नाश होनेसे वासना क्षीण होती है और वासनाका ही क्षय होना मोक्ष है और उसीको जीवन मुक्ति कहा है।

जीवन् मुक्तिः स या मुक्तिः
सखा मुक्तिः पिण्डपातने।
या मुक्ति पिण्डपातेन
सा मुक्तिः श्वनि शूकरे॥

अर्थ—जीवन मुक्ति वही मुक्ति है जो मरनेपर मुक्ति मानते हैं वह तो स्वान और शूकरको भी है ऐसा जीवन मुक्ति अवधूत गीता में कहा है:—

हृदाकाशे चिदाचित्यः सदा भासन्ति।
नास्तमेति न चोदेति कथं सन्धया मुपास्महे॥

अर्थ—हृदय रूप आकाशमें चैतन्य आत्माका प्रकाश सदा होता है। न तो वह अस्त ही होता है और न उदय ही होता है तो जो पारदर्शी सन्यासी हैं उनकी सन्ध्याकी उपासना कैसे हो। प्रमाण बहुत है पर न लिखनेका कारण अन्तमें कहा जायगा।

अब यहांपर लिखते हैं कि त्रिदंड धारण ब्राह्मण हीका धर्म है क्षत्रिय वैश्यका नहीं है और पूर्वमें लिखा है कि:—(त्रिदंडी द्वारिका मगात्) अर्जुन त्रिदंड धारण कर द्वारिकामें गया। इन दोनोंमें कितना विरोध है।

एकैक मपवीतंतु यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।

बृहत्पारारीमें लिखा है कि ब्रह्मचारी और सन्यासी एक जनेउ पहिने इस कलयुगमें वहुत संन्यासी यज्ञोपवीतको त्यागते हैं यह शास्त्र विरुद्ध है ।

सशिखं वंपनं कृत्वा वहिः सूत्रं त्यजेद्बुध ।
यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥
येन सर्व मिदं प्रोक्तं सूत्रे मणि गणा इव ।
तत्सूत्रं धारयेंद्योगी योग वित्तत्व दर्शिंवान् ॥

अर्थ—ब्रह्मो पनिषदमें यह विस्तारसे लिखा है कि जो विद्वान यति वाहरकी शिखाको त्यागकर और वाहरके सूत्रको त्यागकर जो अक्षर परब्रह्म में उस सूत्रको धारण करे वेसा कहा है ऐसा ही दूसरे मन्त्रका भाव समझ लो आगे नामोंका खंडन लिखा है कि तीर्थाश्रम (बनारण्य गिरि पर्वत, सागर, सरस्वती, भारतीय पुरी नामानि वैदश । इत्यक्तं तच्छास्त्र विरोधा दुपेक्ष्यमिति ॥) इनका भाव यह है कि इन नामोंको नहीं मानना चाहिये । उत्तर—देखो पूर्वमें किसी ऋषिने सरस्वतीके तट पर तप किया इसलिये वह सारस्वत कहाया आज भी उसकी सन्तान सारस्वत कहाती हैं ।

उत्कल देशमें रहनेवालोको सन्तान उत्कल कहाती है । मैथिल देश निवासोकी सन्तान मैथिल कहाती है ऐसे ही सबको समझो उसी प्रकार तीर्थमें जो आचार्य्य रहा उसको सम्प्रदायके सन्यासी तीर्थके नामसे हुये जिसने कुछ आश्रम बनाकर तप किया उसकी

सम्प्रदायके आश्रम नामके हुये गिरि-गुहामें जिसने तप किया उसकी सम्प्रदायके गिरि। सबमें इसी तरहके जानो ! विचार करो कि केवल नामसे कल्याण नहीं होता है किन्तु कल्याण गुणसे होता है अगर नाम मात्रसे ही कल्याण होता हो तो जैसे किसीका नाम तो अमृत और स्वभाव विषके समान तो नाम क्या करेगा और जो आंखोंका अन्धा है और नाम नयनसुख तो आंखोंके अन्धेको नैनोंका क्या सुख है। तैसे ही नाम तो आचार्य और कर्म अनाचार्यके तो वह आचार्यवाला नाम डुबा देगा कि पार लगावेगा !

पार लगानेवाला एक गुण ही है नाम चाहे किसी प्रकारका हो सो नीति शास्त्रमें कहा है।

व्यालाश्रयापि विफलापि सकंटकापि वक्रापि पंकिल भवापि हुये सदापि। गंधेन बंधुरसिकेतकि सर्व जंजो रेको गुणः खलु निहन्ति समस्त दोषान् ॥

अर्थ—हे केतकी तू सर्पोंका घर है फलसे भी रहित है कांटोसे युक्त है कीचड़से उत्पन्न होती है तंदुखसे प्राप्त होती है तेरेमें एक गन्ध गुण है इसीसे तू सब जीवोंको प्रिय है।

इसी प्रकार जीभमें एक ही शुभ गुण होता है वह सब दोषों का नाश कर देता है। इस बातको भली प्रकार विचारना चाहिये कि यह नाम तो शास्त्र विरुद्ध है और जो ब्राह्मणों व क्षत्रियोंको दास नाम हैं यह किस वेद शास्त्रमें युक्त हैं और पूर्वमें किस ऋषि तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके दास नाम हुये हैं।

इन्होंने जितना लेख लिखा है वह श्री भगवान जगद्गुरु शंकराचार्य्यके ही ऊपर घोर कुठाराघात किया है और उन्हींका खंडन लिखा है क्योंकि उन्होंने एक ही दण्ड ग्रहण कर और ऊपर कहे इन सर्व शिष्योंको साथ लेकर नास्तिकोंसे महा संग्राम कर और चारों दिशाओंका दिग्विजय कर जो लुप्त हुआ मुख्य वैदिक सिद्धान्त उसको उपदेश सहस्त्री शारिरिकादि भाष्यों द्वारा प्रगट कर और जो वौद्धादिकोंसे नष्ट भ्रष्ट हुये थे मुख्य तीर्थ स्थान उन सबका उद्धार किया। इस बातको सर्व विद्वज्जन जानते हैं और इसी विषयमें शङ्कर दिग्विजय ग्रन्थ है उसमें इनका सर्व उपकार भली प्रकार कहा है उसको भी देखते हुए ऐसे आचार्य्यके सिद्धान्तका खण्डन और निन्दा करते हुए—

चौ०—जरि न जीभ मुख परे न कीरा।
लेख लिखत अस भई न पीरा॥

और भी विचारना चाहिये कि जो इनका सिद्धान्त और इन आचारियोंके नाम अयुक्त होते तो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी जिन्होंने वैदिक मूर्तिपूजा देव यजन और श्राद्धादिका खंडन कर दिया, और वहुतोंने मान भी लिया तो क्या यह नामोंका खंडन करना इनके वास्ते छोड़ देते कि, त्रिदण्डी विस्वकसेनाचार्य्य होंगे जो इनका खंडन करेंगे। अब उस उपक्रम और उपसंहारको दिखाते हैं जो लिखा है कि अद्वैतवादी हाथियोंके झुण्ड वास्ते सिंहके समान और उन्हींके सिरपर मैं वामचरण रखता हूं. आप सब,

लोग देखिये इस नास्तिकतापर भी विचार करो कि सनकादिक दत्तात्रय वशिष्ट आदि जितने पूर्वके आचार्य हैं और ज्ञान काण्डकी जितनी वेद श्रुतियां हैं वह सर्व अद्वैत हीका प्रतिपादन करती हैं उनके खंडनको और उन्हींके सिरपर वाम पैर रखनेका लेख लिखते हुए इनके प्रति यह दोष है कि:—

दोहा-हृदय न इनका फट गया, लेख लिखत अस नीच
देहान्तरमें गिरेंगे घोर नरकके बीच ॥

श्री गौड़ पादाचार्य्यकी मान् डूक कारिका और भगवान श्री शंकराचार्य्यजीके ग्रन्थ जो सनक सूजात भाष्य विक्कि चूड़ा-मणि आदि श्री शंकरानन्दजीकी गीतापर व्याख्या और पंचदसी आदि ग्रन्थोंको छोड़कर जो पुर्वाचार्य्योंके ग्रन्थ हैं और जो श्रुति का सार सिद्धान्त वही देखते हैं। सनतकुमारजी नारदके प्रति कहते हैं:—

छन्दोग्य श्रु (यत्रनान्य त्यज्यति नान्यच्छृ णोतिना-न्य द्विजानाति सभूमा)

सर्व कामान्परित्यज्य अद्वैते मरमे स्थितिः ।
यत्किञ्चित्पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुः श्रुतिः ॥
यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्या यतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूतरं नित्यं स्वत्वमेव त्वमेव तत् ॥
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं जन्म पाप विनाशयेत ।

अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं मृत्यु पाशं विनाशयेत् ॥
एक मेवा द्वितीयं ब्रह्मने हनानास्ति किञ्चन ।
सर्वं खलिवदं ब्रह्मने हनानास्ति किञ्चन ॥
एका ब्रह्म द्वितीयो नास्ति ।
अभेद दर्शनं ज्ञानं यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य
मनसासह ॥
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् नविभेति कुतश्च नेति ।
प्रपञ्च मखिलं यस्तु ज्ञानाग्नौ जुहुयाद्यतिः ॥
आत्म न्यग्नीन्समारोप्य सोऽग्नि होत्री महायतिः ॥
ब्रह्ममै वाया मिति प्राहुर्मुनयः पारर्शिनः ।
ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परः ।
ब्रह्मवित् परमाप्नोति तरति शोकं चात्मवित् ।
देह त्रयाति रिक्तोऽहं शुद्ध चैतन्य मस्म्यहम् ।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन मुक्ति उच्यते ॥
तुषेण वद्धो व्रीहिः स्यात्तुषा भावे न तण्डलः ।
एवं वृद्धस्तथा जीवः कर्म नाशे सदा शिवः ॥
पाशवद्धस्तया जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ।

शिवाय विष्णुरूपाय शिव रूपाय विष्णवे ॥

अत्रायम् पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति ।

ब्रह्मै वेदम् सच्चिदानन्द मात्रं ॥

वाचा रम्भणं विकारोनामधेयंमृत्तिकेत्येव सत्यम् ।

कार्य्योपाधि रयं जीवः कारणों पाधिरीश्वरः ॥

बन्धो मुक्त इति व्याख्या गुणते मेन वस्तुतः ।

गुणस्य माया मूलत्वान मे मोक्षो न बन्धनम् ॥

अर्थ—श्री भगवान कहते हैं कि हे उद्धव गुणोंकी उपाधिसे ही मुझ आत्माको वद्ध या मुक्त कहा जाता है और गुण माया मूलक हैं वास्तवमें मुझ आत्मामें न वद्ध है न मोक्ष है । गीतामें भी कहा है—

[ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्] इस वाक्यसे भी अभेद ही है क्योंकि आत्मा एक है भेद केवल उपाधि कल्पित है कल्पित वस्तु मिथ्या है अवधूतोपनिषद्में लिखा है ।

न विरोधो नचोत्पत्ति र्न वद्धो नच साधकः ।

न मुमुक्षु र्न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

अर्थ—आत्मामें न कोई विरोध है न कोई उत्पत्ति है न बुद्ध है न साधक है न मोक्षकी इच्छा है न मुक्त है सबसे विलक्षण परमार्थ वस्तु आत्मा ऐसा है ।

मनुजीका वाक्य है--

सर्वं भूतस्थ मात्मानं सर्वं भूतानि चात्मन्य ।
सम्पश्यन्नत्मया जीवे स्वराज्य मधि गच्छति ॥

अर्थ—समस्त भूतोंमें स्थित अपने आत्माको और समस्त भूतोंको अपने आत्मामें देखता हुआ आत्म यज्ञ करनेवाला पुरुष स्वराज्य लाभ करता है ।

विष्णुपुराण—

यदा समस्त देहेषु पुमानेको व्यवस्थितः ।
तदाहि कोभवान् सोऽहमित्ये तद्विफलं वचः ॥

अर्थ – जबकी समस्त देह एक ही पुरुष व्याप्त हैं तब आप कौन हैं, मैं अमुक हूं, यह कहना व्यर्थ है ।

सकल मिद महंच वासुदेवः परम पुमान परमेश्वरः एकं इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते ब्रज बिहाय तान्दूरात् ॥

अर्थ—यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं कि यह सम्पूर्ण संसार और मैं एक मात्र परम पुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं जिनकी हृदयस्थ अनन्त भगवानमें ऐसी दृढ़ भावना हो गई है उन्हें तुम दूर से ही छोड़कर निकल जाया करो ।

त्वया यदूभयं दत्तं तद्दत्त मखिलं मया।
मत्तो विभिन्न मात्मानं द्रष्टुं नार्हसि शंकर ॥
योऽहं स्तवं जगत्येदं सदेवासुर मानुषम्।
अविद्या मोहितात्मानः पुरुषा भिन्न दर्शिनः ॥

अर्थ—श्रीकृष्णजी महादेवजीसे कहते हैं जो अभय आपने दिया है वह सब मेरा ही दिया हुआ है। हे शंकर आप अपनेको मुझसे पृथक न देखो जो मैं हूं वही आप और देवता, असुर तथा मनुष्योंके सहित यह सारा संसार है जिन पुरुषोंका चित्त अविद्यासे मोहित हो रहा है यही भेद-भावको देखनेवाले होते हैं।

भविष्योत्तर पुराणमें श्री महादेवजीका वाक्य है—

विष्णो रन्यंतु पश्यन्ति ये मां ब्रह्माण मेव वा।
कुतर्क मतयो मूढ़ाः पच्येन्ते नरकेष्वधः ॥
गेच मूढ़ा दुरात्मानो भिन्नं पश्यन्ति मां हरे।
ब्रह्माणं च ततस्तस्मा ब्रह्महत्या समं त्वघम् ॥

अर्थ—जो लोग मुझे व ब्रह्माजीको बिष्णुसे अलग देखते है वे कुतर्क बुद्धि मूढ़ जन नीचे नरकमें गिरकर दुख भोगते हैं तथा जो दुष्ट बुद्धि मूढ़ लोग मुझे ब्रह्माजीको बिष्णुसे पृथक्र देखते हैं उन्हें उसके ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। इसो प्रकार हरिवंशमें महेश्वरका कथन है कि—

अहं त्वं सर्व गोदेव त्वमेवाहं जनार्दन। ।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैथैं जगत्त्रये ॥

अर्थ—हे जनार्दन, हे देव मैं ही तुम हो और तुम ही मैं हूं सम्पूर्ण त्रिलोकीमें हम दोनोंका शब्दसे या अर्थसे किसी प्रकारका भेद नहीं है। इसी प्रकार सर्व श्रुति स्मृतियोंमें अभेद ही कहा है जो विशेष देखना हो तो बिष्णु सहस्र नाम शांकर भाष्यमें देख लो और भी लिखा है—

ब्रह्माण्ड लोक देहेषु सद्वस्तुनि पृथक्कृते ।
असन्तोसऽण्डा द्या भान्तु तद्भानेऽपीह काक्षितिः॥

अर्थ—ब्रह्माण्ड लोग और देहको सद्वस्तु जो आत्मा है उससे जिस ब्रह्मनिष्ट ज्ञानीने अलग निश्चय कर लिया हैं तो फिर असत् ब्रह्माण्ड लोक और मिथ्या मृग तृष्णाके जलवत आकाशमें निलताके समान सुक्तिकामें रजतवत शषाके मृगवत् और बन्ध्याके पुत्र समान भासे तो भासने दो उसके भासनेसे हमारी क्या हानि है अगर जो इन्होंने श्रीशंकरानन्दी गीता या श्री मधुसूदनी श्रीमद्भागवत गीता पर जो टीका है उसको एक बार भी अवलोकन किया होता तो ऐसी भ्रान्त बुद्धि नहीं होती जो सज्जनोंका धन यज्ञके वास्ते मांग कर फिर उसमेंसे बचाकर अकारण पूर्वाचार्यों और श्रुति सिद्धान्त का खण्डन और निन्दा लिखकर छपवाना तिसका फल क्या है कि उन विचारोंको सुख शान्तिकी प्राप्ति नहीं है और न आगेकी आशा ही मालूम होती है क्योंकि यह तो उन भोले भालोंको रोचक भया-

नक वचन सुनाकर अनर्थ हीमें प्रवृत्ति करेंगे तो सुखारीकी प्राप्ति कैसे होगी और अभेद भावमें जब किसीसे भेद ही नहीं है तो निन्दादि कौन किसकी करे।

भगवान भी कहते हैं [वासुदेवं सर्व मिति] ऐसा जानकर जो करेगा वह वासुदेव ही को करेगा। और भेद-भावसे भी कहीं नहीं कहा है कि अकारण किसीकी निन्दा अपनी प्रतिष्ठाके वास्ते करो या दुख दो यह काम महात्माका तो है ही नहीं अगर ऐसी भक्ति करे तो क्या कुछ हानि है।

दोहा:—प्रभु,जल-निधि मैं बीचिहूं, तुम रवि-शशि मैं कांति।
हरि विभावसु मैं तेज हूं, कहा द्वैतकी भ्रांति॥
प्रभु पानी मैं बर्फ हूं, हरि भृङ्गी मैं कीट।
भेद हमारो है नहीं, ज्यों मृतिका अरु ईंट॥

ऐसी भक्तिके किये, कहा कहौ है हानि।
हानि अगर कछु होइ जो तौ तुम्हरी ले मानि॥

अब जो यह लिखा है:—

यावत्रस्यु स्त्रयो दंडास्तावेदकेन वर्तयेत्।

अर्थ—मेधातिथिका वाक्य है कि जबतक त्रिदण्ड न प्राप्त हो तबतक ही एक दंड रक्खे।

अब इसपर विचार करो कि क्या वेणु दंडोंके वास्ते कहा है या कायिक, वाचिक, मानसिक दंडोंके वास्ते कहा है। अगर जो ऐसा निश्चय किया जाय कि जबतक वेणुके तीन दंडोंकी प्राप्ति

न हो तवतक एक वेणु दंड धारण करे तव तो सम्पूर्ण श्रुतियोंका खंडन हो जायगा। क्योंकि उपनिषदोंमें सर्वत्र यही लिखा है कि परम हंस शिखा सूत्रको त्यागकर एक वेणु दंडको ब्राह्मण ग्रहण करे और बहूदक सिखा सूत्रके सहित वही तीन दंड धारण करे। और भी विचार करो, वहां तो परमहंस सबसे श्रेष्ठ और कहां कुटीचक्के बाद बहूदक तो क्या।

प्रथम ऊपर चढ़कर नीचे गिरे या नीचेसे ऊपर चढ़े। इसका अर्थ जैसा इन्होंने किया है सो ठीक नहीं है, अर्थ इसका यह है जबतक ब्राह्मण वैराग्यको न प्राप्त होकर सत्यासन ग्रहण कर ले तबतक गृहमें रहता हुआ केवल एक वेदोक्त कर्मको निष्कामनासे अन्त:करणकी शुद्धिसे विबेक वैराग्यकी प्राप्ति हो उसी समय वैराग्य लेकर श्रवण मनन निदिध्यासनसे कायिक वैराग्यादिकी प्राप्ति हो उसी समय सन्यास वाचिक, मानसिक संयम रूप तीन दंडोंको ग्रहण करके फिर उस एक कर्म-रूपी दंडको अब इस मंत्र का जैसा जर्थ लिखा है वह भी देखिये:—

कुर्वन्नैवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयिनान्यथे तोऽस्तिन कर्म लिप्यतेनरः॥

अर्थ—मनुष्यके लिये उचित है, यही निष्काम कर्मको करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे क्योंकि निष्काम कर्म करनेसे मनुष्य उसमें लिप्त नहीं समझा जाता, अतः कर्म परित्याग करना वेद विरुद्ध है।

अगर ऐसा अर्थ माना जायगा तब तो सन्यासके ऊपर महती आपत्ति आ जायगी क्योंकि सन्यासमें सर्वथा कर्मका त्याग ही कहा है। सो पूर्व लेखमें दिखा ही दिया है इस मंत्रके अर्थमें विद्वानोंका यह कहना है कि जबतक ब्राह्मण सन्यासका अधिकारी न हो तबतक वेदोक्त निष्काम कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे। तो उसको अन्यथा कर्म लिप्त न होंगे। अथवा क्षत्रिय वैश्य जिसको कि सन्यासमें अधिकार नहीं है वह भी वेदोक्त निष्काम कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे तो उसको भी अन्यथा कर्म लिप्त न होंगे तो वह भी अन्तःकरणकी शुद्धिसे ज्ञान द्वारा मोक्षको प्राप्त हो जायगा।

ऐसा ही गीतामें लिखा है:—

कर्मणैवहि ससिद्धमास्थिता जनकादयः।

अर्थ—पूर्वमें जनकादि क्षत्रिय हुए हैं कहांतक कहें इसी प्रकार इन्होंने सब पुस्तकोंमें अर्थका अनर्थ ही लिख डाला है और जो पराशरीके बहुत प्रमाण दिये हैं और इसके ऊपर जो श्री शंकरानन्दी टीका है उसको इन्होंने स्वप्नमें भी देखा होता, तो जो श्लोक लिखे हैं उनके अर्थका पूरा पता मालूम हो जाता। और देखो:—

दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्वदैव विधीयते।
न दण्डे न बिना गच्छेदिषु क्षेपत्रयं बुधः॥

अर्थ—यमदग्नि स्मृतिमें लिखा है कि त्रिदंड और देहका

संयोग सर्वदा विधान है। ज्ञानी तीन इषुक्षेपसे अधिक बिना त्रिदंड के न चले। मूलमें तो केवल दंड पाठ है और अर्थमें त्रिदंड इसी प्रकार सर्व पुस्तकमें ऐसा ही गड़बड़ लिखा है। और भी लिखा है कि सन्यासी अग्नि न छुए, क्रोध न करे, द्रव्य आदिका संग्रह न करे, स्त्रीको पास न आने दे। प्रतिमाकी भी स्त्री न देखे। इसी प्रकार बहुत कुछ लिखा हैं। पर भृगु क्षेत्रके पास नगवामें १५ दिवस इनके पास रहकर देखा है कि क्रोधकी तो मूर्ति ही है जिस से कुछ अर्थ हो उसको छोड़ और को तो भस्म ही कर डालनेकी इच्छा रहती है। और यह भी सुना था कि अमुकने ४००) रुपया त्रिदण्डीको दिया किसीने २००) किसीने १५०) ऐसा बहुतोंसे सुना और जब यज्ञकी पुर्णाहुति हो गई और सब विदा हो गये तो तो चारों ओरकी स्त्रियोंको बुलाकर खूब रुपया पुजाया और सुना कि ७५०) यज्ञसे बचाकर त्रिदण्डीने यहां जमा किया है। ऐसा ही बहोरनपुर आदि कई जगह सुना है कि त्रिदण्डीका कई हजार रुपया जमा है और कलकत्तामें बहुतोंने देखा कि एक त्रिदण्डीके पास धूनी लगी और खाने पीनेका सामान भी बना ले। अगर जो कोई पूछे कि आप अपनेको प्रभंश कहते हैं और लेख भी सन्यासी के वास्ते बड़ा विचित्र लिखा है। पर व्यवहार तो तुम लोगोंका इस लेखसे बहुत विपरीत है तो यही उत्तर दे सकते हैं कि हाथीके दांत दिखानेके और खानेके दूसरे होते हैं। इसके बाद और कुछ नहीं कह सकते हैं।

देवता प्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दस्टि वाच दण्डिनम्।

ऐसा पाठ कई स्थानोंमें देखा है पर अपनी प्रतिष्ठाके कारणः लिखा है किः—

यतिं दृष्ट्वा त्रिदंडिनम् ।

इसी प्रकार सब श्रुति स्मृतियोंका पाठ बदल दिया है पर मूर्खों और नीचोंको छोड़ कोई विद्वान या धर्मज्ञ न तो इसको स्वीकार करेगा और न प्रतिष्ठा ही करेगा अगर करेगा तो हमारे समान खेद ही करेगा । इतना कह लेख समाप्त करता हूं ।

चौपाई

बिश्वनाथ काशी पुरि माहीं ।
जहां दुःख दरिद्र अघ नाहीं ॥
तेहि पुरकी महिमा अहि राऊ ।
बर्णि न सके शारद गणराऊ ॥
जहां मुक्तिकी परम निसानी ।
काशी खण्ड प्रत्यक्ष बखानी ॥
यह प्रिय चरित जान सब कोई ।
जापर कृपा शम्भुकी होई ॥
शम्भु बिमुख हरि भक्ति न पावा ।
यह सब बेद पुराण बतावा ॥

तातें शम्भु चरण चित दीजै।
परम भक्ति पदवी गहि लीजै॥
हैं शंकरके चरित अपारा।
को कबि बर्णि लगावै पारा॥
तातें नहिं हम बरणन कीन्हा।
यह निर्द्वन्द्व जानि मन लीन्हा॥

दोहा

याही पुरी परम पवित्रमंह, कीन्ह लेख निर्द्वन्द्व।
जानि बहुत बिस्तारको, करि दीन्हा है बंद॥
श्री अनन्त भगवानके, चरण कमल धरि ध्यान।
लेख समाप्त कर दिया, मूर्ति मधुर उर आनि॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

कबित्त

अर्थ पंचकादिमें सुना सो सहन कीन्हा,
देखि यतीन्द्र मारतण्ड छाती तड़फाड़ती है॥ १॥
कहा कहूँ दैव अब कही न जाइ कुछ,
खर्च बिन भाई मम कलम सकुचाती है॥ २॥

नाहीं तो बना बृहत लेख करि प्रचार जगमें,
एक बात आती अरु एक चली जाती है ॥ ३ ॥
देखो निर्द्वन्द्व सब द्वन्द्वनको त्यागि बैठे,
ऐसी हू हालतमें इन्हैं नाहीं लाज आती है ॥ ४ ॥

मरमस्थल भेदी बज्र वाणोंके समान यह यतीन्द्र धर्म मार्तंड हम लोगोंके हृदयको ऐसे विदीर्ण करता है जैसे कोई किसीके घाव में नमकका मर्दन करे तो कैसा भी हिम्मत वाला पुरुष क्यों न हो पर व्यथा न सह सकनेके कारण कुछ न कुछ दुख रूप निकालेगा ही। उसी प्रकार हमको समझो क्योंकि बर्तमान दशामें हम लोगों की कितनी भी निन्दा करते तो कुछ परवाह न थी लेकिन जो पूर्वाचार्योंकी निन्दा और खंडन किया है इसको न सह सके तो इतना लेख अत्यन्त खिन्न चित्तसे प्रमाणयुक्त लिखकर दिखा दिया है। इस पत्रके संशोधन कर्त्ता श्रीमान ब्रह्मचारी माधव स्वरूपजी हैं जो ब्रह्मविद्यामें परम निपुण और तपकी मूर्ति हैं इन्होंने श्री गंगा-जीके तट नरवर पाठशाला निवासी श्री मत्परम हंस परिव्राजका-चार्य श्री १०८ श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रमजी सर्व शास्त्र विशारद और ब्रह्मनिष्ठ साक्षात ब्रह्म स्वरूप ही थे उनके पास बहुत समय तक रहकर सम्पूण श्रुति स्मृति इतिहासादि शास्त्रोंको भली प्रकार पढ़कर सार तत्वको निश्चय किया है अब इनके पास कई महात्मा और पंडित वेदान्त श्रवण कियां करते हैं। इनके दर्शन मात्रसे ही मनुष्य कल्याणको प्राप्त हो सकता है और अनुमोदनकर्त्ता श्रीपरम-

हंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री पंडित स्वामी भौमाश्रमजी हैं जो अविद्याजन्य अज्ञानको नष्ट करनेके वास्ते साक्षात बोधस्वरूप हैं इनके दर्शन और सत्संगसे परम लाभकी प्राप्ति हैं। इस लेखके विषयमें जिस किसीको उत्तर प्रतिउत्तरकी इच्छा हो तो पता काशी जी असीघाट पोष्ट लंका नम्बर १। ७८ माहेश्वर मठ श्री स्वामी भौमाश्रम जीव श्री स्वामी मधुसूदनाश्रमजीके नाम जबाव कार्ड या लिफाफा टिकट भेजकर कर सकता है या इसी पतेसे स्वयं कर सकता है। इति

ॐ शांतिः शान्तिः शान्तिः